गुड़िया का ब्याह

इला प्रसाद

गुड़िया का ब्याह

उस दिन अचानक ही हमें मालूम हुआ कि हमारी गुड़िया अब बड़ी हो गई है और हमें उसकी शादी कर देनी चाहिए। हमें समझ में भी नहीं आता अगर दीदी ने बतलाया न होता। गुड़िया दीदी ने ही बनाकर दी थी। लाल होंठ और काली पहुँचने वाली कपड़े की सफेद गुड़िया जिसे हम बडे चाव से कभी साड़ी तो कभी फ्राक पहनाते। वह इतनी सुंदर थी कि किसी भी ड्रेस में अच्छी लगती। कभी हम उसके लंबे काले बालों की चोटियाँ बना देते जब फ्राक पहनाते और उन्हीं बालों का जूड़ा बन जाता साड़ी पर। लेकिन,

उसकी शादी का खयाल कभी हमारे मन में नहीं आया। हम तो हर रोज की तरह स्कूल से लौटकर अपनी किताबों की अलमारी के निचले खाने में बैठी गुड़िया से बातें कर रहे थे। उस छोटे-से घर में और जगह थी भी नहीं। एक कोने में हमारी आलमारी, दूसरे में दीदी की। बाकी जो जगह बची वहाँ हमारे बिस्तर। दीदी बड़ी थीं, उन्हें बहुत पढना होता था, इसलिए उनके लिए एक टेबल कुर्सी भी थी। हम तो यूँ ही पढ़ लेते थे। ज्यादा पढ़ना भी नहीं था। सुबह सात बजे से दस बजे तक का स्कूल फिर घर आकर थोड़ा होमवर्क और बाकी समय गुड़िया का। उस दिन भी यही हुआ। हमने किताबें कोने में डालीं, खाना खाया और गुड़िया से बातें करने लगे।

दीदी अपनी कुर्सी पर बैठी परीक्षा की तैयारी में व्यस्त थीं कि अचानक उन्होंने सिर घुमाया और बोलीं 'सुधा, नीलू! मुझे लगता है तुमलोगों की गुड़िया अब बड़ी हो गई है। उसकी शादी कर तुमलोगों को उसे ससुराल भेज देना चाहिए।'

हम चकित! सब अच्छी बातें दीदी के ही दिमाग में कैसे आती हैं!

लेकिन, अब अगली समस्या उठ खड़ी हुई। हम गुड़िया का दूल्हा कहाँ खोजें? पूरे मुहल्ले में जिस-जिस को हम जानते थे सबके तो गुड़िया ही थी, या फिर गुड्डा-गुड़िया दोनों ही थे। अकेला गुड्डा तो किसी का भी नहीं था। कौन हमारी गुड़िया से ब्याह रचाए?

हम पूरा मुहल्ला अगले दो दिनों में घूम आए। कहीं हमारी सुंदर गुड़िया का दूल्हा नहीं था। क्या समझती हो, लडकी की शादी आसान होती है? कुक्कू ने सयानेपन से कहा 'मैं जानती हूँ, रोज तो मेरी माँ मेरे पपा से यही कहती हैं। मेरी दीदी की शादी होनी है न। बहुत ढूँढ़ना पडता है।'

हम थक हारकर रुआँसे हो गए।

नहीं करना गुड़िया का ब्याह!

फिर दीदी ने ही हमारी परेशानी समझी। उन्होंने एक गुड्डा बना दिया। हम वह गुड्डा शीलू के घर दे आए। उनका गुड्डा, हमारी गुड़िया! विवाह की तैयारियाँ होने लगीं।

दिन तो रविवार ही रखना था। सब की छुट्टी होती है। शादियाँ रात में होती हैं इसलिए और कोई झंझट नहीं। सब आ सकते थे और सब ने आना स्वीकार भी कर लिया। हम सारे दोस्तों को निमंत्रण दे आए। माँ ने छोले-पूरियाँ और गुलाब जामुन बनाने की स्वीकृति दे दी। जिन्हें आना था वे सब बाराती ही थे। कुल दस-बारह बाराती। नीलू,

पंडित। गुड्डे की मम्मी शीलू। गुड़िया की मम्मी मैं। मुन्ना गुड्डे का पिता बनने को तैयार हुआ। सबकुछ निर्विघ्न संपन्न हो जाता लेकिन शादियाँ क्या इतनी आसानी से हो जाती हैं! कन्यादान के समय समस्या खड़ी हो गई जब पंडित ने पूछा, 'गुड़िया के पापा कौन?'

मुन्ना हमारी तरफ आ गया। 'मैं गुड़िया का पिता हूँ। गुड्डे के पिता नहीं हैं।'

पंडित जी मान गए।

शादी हो गई।

ऐसी परंपरा है कि लडकी ससुराल जाए तो उसके घरवाले रोते हैं और लड़की भी। इसलिए भी हम रोए। अपनी तरफ से भी और गुड़िया की तरफ से भी। बहुत रो धोकर हमने गुड़िया को ससुराल भेज दिया।

'बेटियाँ तो ससुराल जाने के लिए ही होती हैं,' बड़ों ने कहा।

हमारे लिए घर सूना हो गया।

अगले दिन जब हम स्कूल से आए तो हमारे पास करने के लिए कुछ नहीं था।

गुड़िया ससुराल में थी। उसके गहने, कपड़े, खिलौने, बिस्तर सब हमने दहेज में दे डाले थे। आलमारी के निचले खाने में जगह ही जगह थी। हम चाहते तो कुछ किताबें वहाँ भी जमा स्कते थे। लेकिन ऐसा करने का मेरा बिल्कुल ही मन नहीं हुआ। नीलू को भी ऐसा ही लगा।

हम दोनों उदास हो गए।

अगले दिन से गर्मी की छुट्टियाँ शुरू हो गईं। अब दोपहर भर करें क्या? दीदी को तो पढ़ना ही पढ़ना है। हमें कहेंगी, 'सो जाओ।' दिन में कहीं नींद आती है! कितना खाली-खाली लग रहा है। किससे बात करें। किसे नहलाएँ, खिलाएँ, सुलाएँ। लोरी सुनाएँ!

हमें अचानक से रोना आने लगा।

'हम शाम को गुड़िया को देखने जाएँगे। शीलू के घर।' मैंने नीलू से कहा।

वह झट सहमत।

लेकिन इस तरह अगले ही दिन लड़की के माँ-बाप का उसकी ससुराल पहुँच जाना कुछ ठीक नहीं लगा। हमने अपने बड़ों से इसकी निंदा ही सुनी थी। इसलिए हम दोनों को ही लगा कि हमें शीलू और मुन्ना को बुलावे का इंतजार करना चाहिए। जब गुड़िया का रिसेप्शन होगा तब हम जाएँगे।

पहाड ज़ैसे गर्मी की छुट्टियों के दिन।

दिन भर गर्म हवा साँय-साँय करती। मैं और नीलू ढूँढ़-ढूँढ़ कर पुराने धर्मयुग निकालते और बाल जगत पढ़ते। चार किताबें ऊँची आलमारी से और गिरतीं और दीदी भइया डाँट लगाते। दो दिन बीत गए। कोई खबर नहीं आई।

'सुधा नीलू! तुम लोग बाहर जाकर खेलतीं क्यों नहीं? शाम हो गई तब भी अंदर ही बैठे रहना है?' बड़ों ने पूछा।

'किसके साथ खेलें? शीलू मुन्ना आते ही नहीं।' हमने मायूसी से जवाब दिया।

'क्यों? मुहल्ले में एक उन्हीं के साथ खेलते थे तुम? कुक्कू भी तो है। रीता संगीता, क्या हो गया है तुम्हें?' दीदी ने डाँट लगाई।

अब हम क्या बताएँ। हमारी गुड़िया उनके पास है। क्या ये जानते नहीं!

'चलो उस ओर घूम आते हैं। क्या पता शीलू मुन्ना कहीं खेल रहे हों। हम भी बाहर जाते हैं। उधर ही जाकर खेलेंगे।' नीलू ने कहा।

शीलू और मुन्ना सड़क पर ही मिल गए। बुढ़िया की दुकान से जाने क्या खरीद कर लौट रहे थे दोनों। हमने उन्हें रास्ते में ही जा पकड़ा।

'कहाँ जा रहे हो?'

आलू ले जा रहे हैं। माँ से आलू-पराठे बनवाएँगे।'

'हमारी गुड़िया कैसी है?'

'अच्छी है। मजे में है अपने गुड्डे के साथ।' मुन्ना बोला।

'लेकिन उसे हमारे पास भी आना चाहिए।'

'अभी कैसे आ सकती है! अभी तो बहू भात होना है।'

'कब करोगे बहू भात?' हमने बड़ी आशा से पूछा।

'बताएँगे न। रुको तो। जब करेंगे तो बुलाएँगे। तब आना।' मुन्ना सयानेपन से बोला।

'कब तक रुके रहें हम तुम्हारे बुलावे के लिए। कब से तो रुके हुए हैं हम। खेलने भी नहीं आते। बुलाते भी नहीं।'

'बुलाएँगे।' दोनों ने एक साथ कहा और चले गए।

हम वापस।

'लूडो खेलो।' भइया ने कहा।

रविवार को आधे घंटे का बाल सभा आता रेडियो पर। उसे सुन लेते। पूरा सप्ताह बीत गया। हम खेलने जाते। कभी शीलू और मुन्ना की शकल नजर न आती मैदान में। घर लौटते। दीदी अपनी टेबल पर पढ़ती मिलतीं। हमें देखकर कभी प्यार से मुसकरा देतीं। फिर पढ़ने लगतीं। हमारे धैर्य की हद हो गई। यह क्या है? हमारी गुड़िया लेकर हमीं से ऐंठ? हमने आपस में सलाह की और किसी को कुछ बताए बिना एक दिन हम दोनों शीलू के घर जा पहुँचे। दरवाजा शीलू की माँ ने खोला।

'चाचीजी, शीलू कहाँ है?' मैंने सादगी से पूछा।

'आओ आओ, घर पर ही है। अंदर जाओ।' चाची जी ने रास्ता दिखा दिया।

हम दोनों शीलू और मुन्ना के कमरे में।

हमारी ही तरह उन्होंने भी अपनी किताबों की आलमारी के निचले खाने में गुड़िया घर बनाया हुआ था। उतने ही आराम से, सुखपूर्वक, हमारी गुड़िया वहाँ गुड्डे के साथ बैठी थी जैसी वह हमारे यहाँ होती।

'देख लिया न, हम भी अच्छे से रखते हैं गुड़िया को।' शीलू बोली।

'उससे क्या! इतने दिन हो गए। तुम लोग आते ही नहीं। बहू भात भी नहीं करते। इसलिए तो हमें उसे लिवाने आना पडा।' नीलू तुनक कर बोली।

'ऐसे कोई ले जाता है क्या? ऐसे लड़की नहीं जाती है शादी के बाद।' शीलू की माँ जो पीछे से हमारा वार्तालाप सुन रही थीं, हँसकर बोलीं।

'लेकिन ये लोग कुछ करते ही नहीं।' मैं रुआँसी हो आई।

लेकिन वे तब तक अपनी बात कहकर जा चुकी थीं। बच्चों की बातों में कौन पड़े!

'हम तो आज इन्हें ले जाएँगे।' मैं और नीलू जिद पर उतर आए।

'हम नहीं देंगे। अरे वाह! शादी की है तो गुड़िया गुड्डे के घर में रहेगी या तुम्हारे घर में? पहले सोचना था। हम कहने आए थे कि हमारे घर में शादी करो?'

'उससे क्या। हमने थोड़े दिन के लिए दिया था। हमेशा के लिए थोड़े ही। गुड़िया हमारी है। गुड्डा भी। हम दोनों को ले जाएँगे।'

'कोई शादीशुदा लड़की को वापस ले जाता है क्या?'

'हम ले जाएँगे।'

'गुड्डे को अकेला छोड़कर?'

'उसे भी ले जाएँगे।'

'घर जमाई बनाओगे?'

'बनाएँगे।'

अच्छी-खासी बहस और लड़ाई के बाद गुड्डा और गुड़िया, दोनों को हथियाकर उन्हें बगल में दबाये हुए, साँझ ढले, हम दोनों विजयी भाव से घर में दाखिल हुए।

'जरा देखो इन्हें। फिर से वापस ले आईं अपनी मरियल-सी गुड़िया और गुड्डा। मँझली दीदी ने मुँह बिचकाया।

'यह क्या है?' दीदी और भइया चौंके।

फिर हम कुछ समझ पाते इससे पहले ही भइया ने आगे बढ़कर गुड्डा और गुड़िया दोनों ही थाम लिए और हँसते हुए उन्हें बालकनी से हाथ बढ़ाकर नीचे नाले में फेंक दिया।

फिर कभी हमने गुड़िया का खेल नहीं खेला...।